MTTP–005

सिंधी–हिंदी–सिंधी अनुवाद में स्नातकोत्तर डिप्लोमा कार्यक्रम (पी.जी.डी.एस.एच.एस.टी.)

अनुवाद परियोजना

(जनवरी 2026 और जुलाई 2026 सत्रों में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों के लिए)

इग्नू जन-जन का विश्वविद्यालय

अनुवाद अध्ययन और प्रशिक्षण विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मैदानगढ़ी, नई दिल्ली–110 068

सिंधी–हिंदी–सिंधी अनुवाद परियोजना

(एम.टी.टी.पी.-004)

(जनवरी 2026 और जुलाई 2026 सत्रों में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों के लिए)

कार्यक्रम कोड : पी.जी.डी.एस.एच.एस.टी.

जैसा कि आपको बताया जा चुका है कि 'सिंधी–हिंदी–सिंधी अनुवाद में स्नातकोत्तर डिप्लोमा' (पी.जी.डी.एस.एच. एस.टी.) कार्यक्रम को पूरा करने के लिए आपको चार–चार क्रेडिट के छह पाठ्यक्रम तथा छह–छह क्रेडिट के दो अनुवाद परियोजना कार्य करने होंगे। इस स्नातकोत्तर डिप्लोमा कार्यक्रम का चौथा (एम.टी.टी.पी.–004) और आठवाँ पाठ्यक्रम (एम.टी.टी.पी.–005) 'अनुवाद परियोजना' का है। इन सभी पाठ्यक्रमों का क्रम इस प्रकार है :

पाठ्यक्रम कोड एवं शीर्षक		क्रेडिट
एम.टी.टी.–001	भारतीय भाषाओं में अनुवाद	4
एम.टी.टी.-041	सिंधी–हिंदी अनुवाद : तुलना और पुनःसृजन	4
एम.टी.टी.–042	सिंधी–हिंदी के विविध क्षेत्रों में अनुवाद	4
एम.टी.टी.पी–004	**सिंधी–हिंदी–सिंधी अनुवाद परियोजना**	**6**
एम.टी.टी.–043	अनुवाद सिद्धांत और सिंधी–हिंदी–सिंधी अनुवाद परंपरा	4
एम.टी.टी.–044	अनुवाद प्रक्रिया और प्रविधि : सिंधी–हिंदी–सिंधी का संदर्भ	4
एम.टी.टी.–045	हिंदी–सिंधी के विविध क्षेत्रों में अनुवाद	4
एम.टी.टी.पी–005	**हिंदी–सिंधी–हिंदी अनुवाद परियोजना**	**6**

प्रस्तुत अनुवाद परियोजना कार्य (एम.टी.टी.पी.–005) हिंदी–सिंधी–हिंदी अनुवाद से संबंधित है। इस परियोजना के अंतर्गत आपको दी गई सामग्री का सिंधी/हिंदी में अनुवाद करना है। अनुवाद के लिए सामग्री संलग्न है। इसका अनुवाद करके आपको मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत करना है। ध्यान रहे कि यह 'अनुवाद परियोजना' एक स्वतंत्र पाठ्यक्रम के समकक्ष है। इसमें उत्तीर्ण होना आवश्यक है।

परियोजना करने का तरीका

प्रस्तुत सामग्री को ध्यानपूर्वक पढ़ें। इससे आप समझ जाएँगे कि यह किस विषय से संबंधित है और इसमें प्रमुखतया क्या कहा गया है। इसके बाद आप इस सामग्री में से वे शब्द और मुहावरे आदि छाँटिए जिनका अर्थ अथवा जिनके सिंधी/हिंदी पर्याय आपको पता नहीं हैं। इन शब्दों को एक कागज़ पर नोट कर लीजिए। ध्यान दीजिए कि अनूद्य सामग्री के अनुवाद करते समय आपको कौन–कौन से कोश देखने की जरूरत है। विषय के अनुरूप समुचित कोशों में से उन शब्दों के पर्याय नोट कर लीजिए।

अब अनूद्य सामग्री को एक बार पुनः पढ़िए। गौर कीजिए कि अब की बार यह आपको ज्यादा अच्छी तरह समझ आती है कि नहीं। यदि कोई अंश समझ में न आ रहा हो तो उसे फिर से पढ़िए और पता लगाइए कि कठिनाई कहाँ है – शब्दों का अर्थ समझने में अथवा वाक्य–विन्यास को समझने में। यदि कोई वाक्य न समझ आ रहा हो तो उसे दूसरी बार, तीसरी बार पढ़िए।

इस सामग्री में प्रयुक्त संक्षिप्तियों पर ध्यान दीजिए। उनके पूर्ण रूप क्या हैं, जानने की कोशिश कीजिए। अधिकांश संक्षिप्तियों के पूर्ण रूप आपको इस सामग्री में ही मिल जाएँगे।

इस तरह अनूद्य सामग्री का अर्थ भली–भाँति समझ लेने के पश्चात उसका अनुवाद आरंभ कीजिए। अनुवाद करते समय भी शब्दकोश का भरपूर उपयोग कीजिए। जिन शब्दों के अर्थ आपको पता हैं उनके लिए भी शब्दकोश देखिए ताकि विषय और संदर्भ के अनुकूल पर्यायों का चयन कर सकें। वाक्य–विन्यास लक्ष्य भाषा (अर्थात् सिंधी/हिंदी) की प्रकृति के अनुसार कीजिए। यानी आपका बनाया वाक्य ऐसा लगे कि आप अनुवाद नहीं कर रहे बल्कि उस भाषा में मूल रूप में लिख रहे हैं। ऐसा तभी होगा जब आपकी वाक्य–रचना स्रोत में कही गई बात का अनुकरण न होकर लक्ष्य भाषा की कथन–शैली के अनुरूप और सहज होगी।

एक पैराग्राफ अथवा एक पृष्ठ का अनुवाद करने के बाद अपने अनुवाद को मूल सामग्री से मिलाइए और देखिए कि आपके अनुवाद का वही अर्थ निकल रहा है जो मूल कथन में कहा गया है। यदि अंतर दिखाई दे तो अपने अनुवाद में सुधार कीजिए। पूरी तरह आवश्स्त होने के बाद अनुवाद को आगे बढ़ाइए। अगले पैराग्राफ/पृष्ठ के अनुवाद के बाद फिर यही जाँच–प्रक्रिया दोहराइए और अनुवाद करते जाइए।

अनुवाद पूरा करने के पश्चात उसे एक बाद फिर मूल सामग्री से मिलाइए और जाँच कीजिए कि आपका अनुवाद और मूल सामग्री समान अर्थ प्रकट करते हैं। यह भी जाँच कीजिए कि कहीं कोई पैराग्राफ, वाक्य अथवा वाक्यांश अनुवाद होने से छूट तो नहीं गया है। तत्पश्चात अनूदित सामग्री को साफ–साफ लिखकर हस्तलिखित रूप में लिखिए अथवा टंकण की व्यवस्था कीजिए।

अनुवाद परियोजना की प्रस्तुति

- अनुवाद परियोजना फुलस्केप आकार के कागज पर पर्याप्त हाशिया छोड़ते हुए एक तरफ टंकित कराके और बाइडिंग कराके प्रस्तुत करें।
- अनूदित परियोजना के आरंभिक पृष्ठ पर आपके इस कार्यक्रम का शीर्षक, पाठ्यक्रम कोड और शीर्षक, नामांकन संख्या, नाम, पता, अध्ययन केंद्र का कोड लिखा होना चाहिए और अंत में आपके हस्ताक्षर एवं प्रस्तुति की तिथि का इस प्रकार उल्लेख होना चाहिए :

कार्यक्रम का शीर्षक :	**सिंधी–हिंदी–सिंधी अनुवाद में स्नातकोत्तर डिप्लोमा (पी.जी.डी.एस.एच.एस.टी.)**
पाठ्यक्रम कोड :	एम.टी.टी.पी.–005
पाठ्यक्रम का शीर्षक :	हिंदी–सिंधी–सिंधी अनुवाद परियोजना
अध्ययन केंद्र का नामः	....
नामांकन संख्या :	....
नाम :	....
पता :	....
	....
हस्ताक्षर :	....
तिथि :	....

- अनुवाद परियोजना के साथ एक **प्रमाण–पत्र भी लगाएँ** जिसमें आप अपने हस्ताक्षर सहित यह प्रमाणित करें कि आपने यह अनुवाद–कार्य स्वयं किया है और इसके लिए किसी व्यक्ति की सहायता नहीं ली गई है।

- **अनुवाद परियोजना विश्वविद्यालय में निम्नलिखित पते पर व्यक्तिगत रूप से/पंजीकृत डाक द्वारा भेजें :**
  कुलसचिव
  विद्यार्थी मूल्यांकन प्रभाग (SED)
  इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
  मैदान गढ़ी, नई दिल्ली–110068

अनुवाद परियोजना प्रस्तुत करने की अंतिम तिथि

जनवरी 2026 में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों के लिए : **30 नवंबर, 2026**
जुलाई 2026 में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों के लिए : **30 जून, 2026**

अंतिम तिथि के बाद भेजी गई परियोजना का मूल्यांकन विलंब से होगा और आप इस अध्ययन कार्यकम को देर से पूरा कर सकेंगे।

कृपया ध्यान दें :

प्रस्तुत की गई अनुवाद परियोजना की एक प्रति (फोटोकॉपी) अपने पास अवश्य रख लें।

शुभकामनाओं सहित।

इस अनुवाद परियोजना कार्य के दो प्रकार के अनुच्छेद दिए गए हैं, जिनका आपको अनुवाद करके प्रस्तुत करना होगा। इनमें से 9 अनुच्छेद हिंदी भाषा में दिए गए हैं। इन अनुच्छेदों का आपको सिंधी में अनुवाद करना है। इस अनुवाद परियोजना कार्य के अंत में सिंधी का एक अनुच्छेद दिया गया है, जिसका आपको हिंदी अनुवाद करना है।

1

सिंधी बाल साहित्य के विकास में बच्चों की पत्र–पत्रिकाओं का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वतंत्रता के पूर्व तथा पश्चात प्रकाशित हुई बाल पत्रिकाओं में से कुछ तो बच्चों में इतनी लोकप्रिय रहीं कि बच्चे उनके नये अंक की बेसब्री से प्रतीक्षा करते। लेकिन कुछ ऐसी भी थीं जिनके लंबी अवधि तक न टिक पाने से बच्चे उनसे जुड़ नहीं पाए। फिर भी अच्छी और लंबे समय तक बच्चों को सुंदर बाल साहित्य देने वाली पत्रिकाओं की संख्या कम नहीं रही है। इन पत्रिकाओं का प्रकाशित होना सिंधी बाल साहित्य के लिए मानो वरदान साबित हुआ है। इनसे न केवल बाल साहित्य को बल मिला है, बल्कि इस साहित्य के लेखन की भी प्रगति हुई हैं। नए–नए लेखक अपने नए दृष्टिकोण से बाल साहित्य को समृद्ध करने में अपना योगदान देते रहे हैं।

स्वतंत्रता के पूर्व पत्रिकाओं को अपनी भाषा की ज़मीन उपलब्ध थी। इसलिए उनके उदयकाल से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक ये पत्रिकाएँ फली–फूलीं और बच्चों में लोकप्रिय रहीं। लेकिन, स्वतंत्रता के पश्चात देश के बंटवारे के कारण यहाँ–वहाँ, पूरे देश में फैले हुए सिंधी बालकों तक पहुँचने में बाल पत्रिकाओं को कठिनाइयाँ होने लगीं।

स्वतंत्रता के पहले सन् 1930 में मोहम्मद सिद्दीक मेमण ने 'गुलज़ार' पत्रिका निकाली। 1932 में अब्दुल अब्बासी ने 'बालक' पत्रिका का आरंभ किया। 1937 में जे.एस.मनसुख ने 'सिंधी गुलशन' पत्रिका निकाली। 1940 में रंगीन चित्रों सहित 'बाराणियूं बोलियूं' शुरू हुई। 'बाराणियूं बोलियूं' पहली पत्रिका थी, जो उस ज़माने में भी रंगीन छपती थी और उसमें सबसे ज्यादा शिशुगीत और बाल लोकगीत छपते थे। इसके संपादक आर.वी. थधाणी थे। जनवरी 1946 में मोती प्रकाश ने 'बाल संदेश' पत्रिका शुरू की। उसी वर्ष ही जेठानंद लालवाणी के संपादन में 'फूलिस्तान' पत्रिका का आरंभ हुआ। उसी पत्रिका की ओर से बच्चों की 'बारन जो बिहिश्त', 'परिस्तानी परी', 'कबूतर जी कुंवार' आदि पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं।

स्वतंत्रता पूर्व की इन सभी बाल पत्रिकाओं द्वारा बहुत ही उपयोगी सामग्री प्राप्त होती रहीं, परंतु इन में से ज्यादातर पत्रिकाएँ बहुत समय तक चल न पाईं और धीरे–धीरे बंद होती गईं। इस भीड़ में दो बाल पत्रिकाएँ सबसे ज्यादा समय तक चल पाने के कारण तथा बच्चों में अपना स्थान बना पाने के कारण विशेष चर्चित रहीं। ये दोनों पत्रिकाएँ हैं – 'गुलिस्तान' और 'गुलफुल'।

विश्व प्रसिद्ध 'बालकन–जी–बारी' के संस्थापक और बाल–प्रेमी शेवक भोजराज मोटवाणी, जो 'दादा शेवक' के नाम से पहचाने जाते हैं, ने वर्ष 1934 में 'गुलिस्तान' पत्रिका निकाली। बालकन–जी–बारी की ओर से उसके पहले कुछ साप्ताहिक पत्रों में बच्चों के लिए 'विन्दुर ऐं सिख्या' (मनोरंजन और बोध) स्तंभ दिया जाता था, जिसमें बच्चे अपनी छोटी–छोटी रचनाएँ भेजते थे। बाद में 'गुलिस्तान' पत्रिका निकलने से बच्चों को बड़ा मंच मिल गया। यह पत्रिका सिंध के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत थी। पूरे सिंध और सिंध के बाहर कई शहरों में 'बालकन–जी–बारी' की शाखाएँ थीं। इसलिए 'गुलिस्तान' को एक बड़ा पाठक वर्ग प्राप्त हुआ। पत्रिका में सुंदर चित्रों तथा छायाचित्रों के साथ–साथ कई नियमित स्तंभ भी होते थे, जिनमें बच्चे भी उत्साह से भाग लेते थे। 'गुलिस्तान' के संपादक पार्वती टी.गिदवाणी और दादा शेवक भोजराज थे। बाद में दादा शेवक की जगह सुप्रसिद्ध सिंधी साहित्यकार लालचंद अमरडिनोमल को शामिल किया गया।

2

पहली बार सरकारी स्तर पर हिंदी गद्य के विकास तथा प्रयोग का प्रयास फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के बाद अंग्रेज शासकों द्वारा किया गया। आप तो जानते ही है कि भारतेंदु युग से पूर्व हिंदी के कई रूप प्रचलित थे। एक तो सामान्य बोलचाल की खड़ी बोली हिंदी से मिलती–जुलती भाषा थी और दूसरी उर्दू–मिश्रित, जो मुगल दरबारों की परंपरागत भाषा थी। ऐसी स्थिति में अंग्रेज़ी प्रशासकों को बहुत कठिनाई होती थी। कोई एक ऐसी भाषा नहीं थी, जिसे सीखकर सामान्य जनता के बीच बातचीत का क्रम बनाया जा सके। अतः अंग्रेज़ अफ़सरों ने इस देश की भाषा सीखने–सिखाने की व्यवस्था फोर्ट विलियम कॉलेज में की। इसमें उर्दू तथा खड़ी बोली, हिंदी दोनों भाषाओं की पुस्तकें तैयार करने की योजना बनाई गई। फोर्ट विलियम कॉलेज के गिलक्राइस्ट महोदय ने खड़ी बोली में हिंदी गद्य को स्वतंत्र रूप से भाषा के रूप में स्वीकार किया तथा हिंदी गद्य में पुस्तकें तैयार करने के लिए लल्लूजी लाल तथा सदल मिश्र नाम के दो व्यक्तियों की नियुक्ति की।

हिंदी गद्य साहित्य के इतिहास में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना वर्ष 1800 की महत्वपूर्ण घटना है। इस कॉलेज के प्राध्यापक सर जॉन गिलक्राइस्ट के निरीक्षण में खड़ी बोली गद्य में पुस्तकें लिखवाने की योजना बनी। इस योजना के अंतर्गत लल्लूजी लाल और सदल मिश्र को हिंदी गद्य में पुस्तकें लिखने का कार्य सौंपा गया। फोर्ट विलियम कॉलेज का कार्य आरंभ करने से पहले मुंशी सदासुखलाल 'ज्ञानोपदेश' और सैय्यद इंशाअल्ला खाँ 'रानी केतकी की कहानी' लिख चुके थे। उस समय सैय्यद इंशा अल्ला खाँ का विचार था – 'एक दिन बैठे–बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिंदवी पुट और किसी बोली का पुट न मिले। बस जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते–चालते हैं।

फोर्ट विलियम कॉलेज के तत्वावधान में लल्लूजी लाल ने 'प्रेमसागर' और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की। इन चारों लेखकों में सदासुखलाल ने 'सुखसागर' और इंशाअल्ला खाँ ने 'रानी केतकी की कहानी' में हिंदी गद्य के भावी साहित्यिक रूप का आभास दिया है। इस संबंध में लल्लूजी लाल का वक्तव्य है – 'संवत् 1860 (सन् 1803) में लल्लूजी लाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र–अवदीच आगरेवाले ने विसकासार ले यामनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कह, नाम 'प्रेमसागर' धरा।'

संस्थाओं का योगदान : हिंदी खड़ी बोली गद्य के जन्मदाता मुंशी सदासुखलाल, इंशाअल्ला खाँ, लल्लूजी लाल और सदल मिश्र के बाद लगभग पचास वर्ष तक ऐसा समय रहा, जिसमें कोई उल्लेखनीय ग्रंथ नहीं रचा गया। परंतु इस बीच ईसाई धर्म–प्रचारकों और कुछ अंग्रेज़ शासकों ने लोगों को हिंदी सिखाने का प्रयास किया, क्योंकि यह सामान्य लोगों के व्यवहार की भाषा थी। भारतीय लोगों में अपने धर्म का प्रचार करने के लिए ईसाई पादरियों ने खड़ी बोली को अपनाकर इसमें बाइबिल आदि पुस्तकों का अनुवाद करवाया। यही कारण है कि खड़ी बोली के विकास में ईसाई पादरियों का भी योगदान महत्वपूर्ण माना जाता है।

लगभग इसी समय ईसाई धर्म प्रचार के विरुद्ध हिंदू शिक्षित वर्ग में अपने धर्म की रक्षा करने की तीव्र भावना जाग उठी, जिससे ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज जैसी संस्थाएँ खड़ी बोली के माध्यम से धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार करने लगी। ब्रह्मसमाज के संस्थापक राजा राममोहन राय ने वेदांत के सूत्रों का खड़ी बोली में अनुवाद किया। स्वामी दयानंद सरस्वती ने वैदिक धर्म के प्रचार के लिए अनेक ग्रंथ लिखे, जिनमें 'सत्यार्थ प्रकाश', 'संस्कार विधि', 'वेदों का भाष्य' आदि प्रमुख हैं। स्वामी जी की संस्कृतनिष्ठ भाषा में ओज, हास्य और व्यंग्य काफी मात्रा में विद्यमान है। उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना करके सबके लिए हिंदी का पढ़ना और पढ़ाना आवश्यक कर दिया। वे हिंदी को आर्यभाषा के नाम से भी पुकारते थे। पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और मुंबई में

आर्यसमाज के प्रभाव से हिंदी गद्य का प्रसार और प्रयोग सर्वाधिक रूप से होता रहा। इसी दौरान, पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी ने सनातन धर्म के प्रचार के लिए 'सत्यामृत प्रवाह' नामक गद्य ग्रंथ की रचना की। वे बड़े प्रभावशाली वक्ता थे। उनके व्याख्यानों और कथावचनों से पंजाब में हिंदी का बहुत अधिक प्रचार हुआ। उनका 'भाग्यवती' नामक सामाजिक उपन्यास बहुत प्रसिद्ध हुआ था। इसके अतिरिक्त 'धर्म रक्षा', 'उपदेश संग्रह', 'शतोपदेश' आदि उनकी उल्लेखनीय गद्य रचनाएँ हैं।

3

प्राचीनकाल में कविता को मनोरंजन का साधन भी समझा जाता था। दरबारों में कवि कविताएँ सुनाकर राजाओं का मनोरंजन किया करते थे। तब कविता पाठ्यक्रम में पढाई जाने वाली कोई चीज नहीं थी। आप कभी–कभी सोचते होंगे कि कविता भी भला कोई पढ़ने की चीज है? यह मनोरंजन की चीज कैसे हो सकती है? इसके न तो शब्द समझ में आते हैं, न इसमें कही गई बात। इससे तो कहानी–उपन्यास अच्छे हैं, जिनमें कही गई बात आसानी से समझ में आ जाती है। उसके लिए कविता की तरह किसी व्याख्या की जरूरत नहीं होती।

लेकिन इस तरह आपका सोचना ठीक नहीं होगा, क्योंकि कविता सिर्फ मनोरंजन की वस्तु नहीं है। चूँकि कविता कम–से–कम शब्दों और अपनी विशिष्ट भाषा तथा शिल्प–सौंदर्य से बातों को स्पष्ट करते हुए चलती है और बहुत–सी बातें उसमें छिपी रहती हैं जिन्हें समझने के लिए उन्हें खोलते रहना आवश्यक होता है। अतः यह गद्य की अपेक्षा कठिन लगती है। लेकिन यह भी तो देखिए कि कविता ही है, जो अधिक देर तक आपको याद रह जाती है। उदाहरण के लिए, आप उपयुक्त समय और स्थान पर आसानी से इसका उपयोग कर सकते हैं। अब आप बताइए कि कविता कैसे मनोरंजन की वस्तु हुई? इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी कहा है कि प्रायः लोग कहते हैं कि कविता का अंतिम उद्देश्य मनोरंजन है, पर मेरी समझ में मनोरंजन उसका अंतिम उददेश्य नहीं है। कविता कम–से–कम शब्दों में जितनी सरल, सुगढ़ तथा लयात्मक ढंग से अधिक–से–अधिक बातें व्यक्त कर सकती है, उतना गद्य नहीं। इसीलिए कविता अधिक समय तक याद रहती है। लयात्मक होने के कारण इसे कहीं भी गुनगुनाया जा सकता है। दूर सुनसान रास्ते में अकेले चला जा रहा राही कविता गुनगुनाकर अपना मनोरंजन कर लेता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कविता हमारे जीवन की अन्य आवश्यकताओं की तरह ही एक प्रमुख आवश्यकता है। कविता के माध्यम से प्राप्त होने वाला सुख किसी भी भौतिक सुख से अलग और बेहतर होता है। यहाँ पर आप यह न समझें कि कविता केवल किताबों और अखबारों में छपी हुई ही होती है। बल्कि गीत, गज़ल, फिल्मी धुन, नज़्म, शेर आदि सभी कविता के ही विभिन्न रूप हैं। आप अवश्य ही कुछ–न–कुछ गुनगुनाते रहते होंगे और इसका आनंद लेते होंगे।

कविता का उद्देश्य और उसके विभिन्न रूपों का परिचय प्राप्त करने के बाद हम कविता के अवयवों के बारे में बताना उपयुक्त समझते हैं। कविता के अवयवों से हमारा तात्पर्य उन तत्त्वों से है जिनसे मिलकर कविता बनती है, अथवा कविता पढ़ते समय जिन तत्वों पर मुख्य रूप से हमारा ध्यान आकर्षित होता है। काव्य अर्थात कविता के आरंभिक काल से ही कविता के स्वरूप को समझने का प्रयास विद्वानों ने किया है। प्राचीनकाल में भारतीय काव्यशास्त्र के अंतर्गत कविता की तुलना एक सुंदर युवती से की गई है और कहा गया है कि शब्दार्थ जिसका शरीर है, अलंकार जिसके आभूषण हैं, रीति शारीरिक अवयवों का गठन है; गुण, स्वभाव और रस उसकी आत्मा है। इन अवयवों के अलावा छंद को भी काव्य का अवयव माना गया है।

इस आधार पर काव्य के छह अवयव बताए गए हैं। किंतु आधुनिक काल तक आते–आते इन अवयवों के विषय में विद्वानों की मान्यता बदल गई। छंद, रीति, रस और अलंकारों पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इसके स्थान पर कविता में कथ्य अर्थात् कही जाने वाली बात और विचार–दृष्टि अर्थात् कवि के चिंतन को विशेष महत्व दिया जाने लगा। किंतु उपर्युक्त अवयवों

को पूरी तरह बेकार साबित करके इन्हें कविता से अलग नहीं किया जा सकता। इसीलिए कविता के बारे में अब कहा जाने लगा है कि काव्य का अंतरंग उसका बोध–पक्ष (भाव पक्ष) है और बहिरंग कला–पक्ष (शिल्प सौंदर्य), दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। अंतरंग काव्य को उत्कर्षमय बनाते हैं तो बहिरंग कला–पक्ष को सार्थकता प्रदान करते हैं।

4

सारे राष्ट्र को टी. वी., वीडियो और कंप्यूटरी चमत्कारों का दर्शक बनाए रखने और दूसरी तरफ पढ़ने–लिखने की चीजों को महँगा या अनुपलब्ध करते चले जाने के पीछे एक बाकायदा सुचिंतित योजना है। जनता का ध्यान शोषण से हटाए रखने या शोषण को जायज़ सिद्ध करने के लिए सामंतवाद धार्मिक अनुष्ठानों, कीर्तनों और देवी–जागरणों का सहारा लेता है। आज के ये आधुनिक सामंत सारे देश को दूरदर्शन केंद्रों के बढ़ते हुए जाल में बाँधकर अपने चेहरे, वचन या घटिया मनोरंजन पिला रहे हैं। वे आदमी को सोचने–समझने का कोई मौका नहीं देना चाहते। चूँकि ये सिर्फ सरकारी माध्यम हैं, इसलिए हर समय या तो नेताओं, मंत्रियों के जिंदा–तिलिस्माती भाषण देखिए या फिर कूल्हे और कमर लचकाते चित्रहार निगलिए – उच्च मध्यवर्गीय लोग कैसे शाही खेल खेलते हैं, किन कपड़ों के लश्कारे लेते सूट–टाई पहनते हैं। कौन–कौन से पेय किन कप–गिलासों में और किस अदा से पीते हैं, किन जन्नाटे लेती गाड़ियों और हवाई जहाज़ों में यात्राएँ करते हैं, किन होटलों या पर्वतीय रमणस्थलियों में किलोलें करते हैं – हीनता का मारा मध्यवर्ग और आम आदमी सब देख–देखकर विस्मय–विमुग्ध होता रहेगा और देवलोक के ये प्राणी उसमें हमेशा एक दूरी और हसरत का भाव जगाते रहेंगे, काश, यह जीवन हमारा भी हो सकता। विज्ञापनों के सहारे एक विशेष जीवन–पद्धति हमारी सोच और सपनों को नियंत्रित करने लगी है। कहने की जरूरत नहीं कि यह हसरत ही भ्रष्टाचार की पहली कोंपल है, क्योंकि सही तरीकों से तो वह इनमें से एक ब्रीफकेस तक नहीं खरीद सकता।

अफीम खिलाने के षड्यंत्र का यह सिर्फ एक पहलू है। दूसरी मार ज्यादा गहरी है – आदमी को अपने दिए सपनों और अंधविश्वासों में डाले रखना, सोच–विचार, संस्कृति–साहित्य, वैज्ञानिक और क्रांतिकारी विचारों से काटे रहना – क्योंकि वहाँ से उखाड़कर ही तो उसे आप अपने बनाए गड्डे में घेरकर पहुँचाए जाएँगे। पर्दे के पीछे घिनौनी चालों या दीखती सच्चाई को गहराई से जाँचने की दिशा में लौटने के सारे रास्ते पहले बंद करने होंगे। सोचने–समझने, अपनी स्थिति का विश्लेषण करने या शतरंज के ऊँचे खिलाड़ियों की चालबाज़ियों को पकड़ने की कामना करना खतरनाक है। हर हालत में जनता को इस खतरे से बचाकर रखना होगा – खतरा यानी स्वतंत्र–निर्भीक सोच।

सारी मानव–सभ्यता को जिन दो आविष्कारों ने आमूलचूल बदल डाला था, उसमें एक था – बारूदी हथियार और दूसरा कागज – यानी ज्ञानविज्ञान का लिखित दस्तावेज। पत्र–पत्रिकाएँ बड़े उद्योगपतियों के हाथों में हैं, उन्हें प्रायः बधिया बना दिया गया है। वे वह सब कर रही हैं, जो सरकार अपने माध्यमों से चाहती है। दूरदर्शन का वे कागज़ी संस्करण हैं। स्वतंत्र हैं सिर्फ किताबें। इसलिए सारे सरकारी माध्यम और व्यावसायिक पत्रकारिता किताबों को फालतू, अप्रासंगिक, अनुपलब्ध कराने में जी–जान से जुटे हैं। संचार–माध्यमों के किसी भी कोने में किताबें नहीं हैं। सरकार हर गैर–जरूरी चीज को सब्सीडाइज कर सकती है, चाहे तो उसे रियायती मूल्य पर सुलभ करा सकती है – न कागज़ के मूल्य में कोई कटौती करेगी, न डाकखर्च में कोई छूट देगी – डेढ सौ पन्ने की तक मूल्य तीस या पैंतीस रुपया, डाकखर्च पाँच या सात रुपया। कैसा मजाक है कि लेखकों को सम्मान–पुरस्कार सब हैं, मगर जिस चीज ने उन्हें लेखक बनाया है, उन किताबों के लिए कहीं कोई सुविधा नहीं है। शिक्षा और संस्कृति का बजट किस तजी से घटाया गया है – यह देखकर धक्का लगता है।

इसके पीछे सिर्फ तीन ही कारण हो सकते हैं : या तो सरकार और सरकारपरस्त पत्रकारिता किताब को निहायत ही फालतू चीज समझती है, जिसकी किसी को कोई जरूरत नहीं है या फिर उनका ख्याल है कि यह शराब और होटलों जैसा कोई नशा है कि आदमी झख मारकर, बीवी–बच्चों का पेट काटकर, अथवा ब्लैकमनी को ठिकाने लगाने के लिए उन्हें खरीदेगा ही। या फिर, हथियारों की तरह ही यह कोई घातक और विस्फोटक चीज है, जिसे जनता से दूर रखना है – उन्हें बनाने वाले उपकरणों की कीमतें अंधाधुंध बढ़ाकर या अन्य सुविधाएँ समाप्त करके। सीधे–सीधे हमला करना तो अनपढ़ होना माना जाएगा। और मुझे असली कारण यही लगता है। अभी दो–तीन दशक पहले ही हमारे नेताओं में दुनिया के महत्वपूर्ण बुद्धिजीवी रहे हैं, पढ़ने और लिखने वाले लोग। डॉ. राधाकृष्णन, सी. राजगोपालाचारी, आचार्य नरेन्द्रदेव, के.एम.मुंशी, जवाहरलाल नेहरू, राममनोहर लोहिया, जिन्होंने दुनिया के ज्ञान–विज्ञान, साहित्य–संस्कृति के साथ अपना मानासक विकास किया था और जिनके पास देश और आदमी को लेकर अपना सपना (विज़न) था। आज न तो व्यक्तित्व की वह ऊँचाई रह गई है, न वैसा नैतिक संकल्प। आम आदमी को विचार, साहित्य, संस्कृति अर्थात् पुस्तक नाम की इस फालतू–सी चीज की जरूरत क्या है? कुछ वाक्य हैं, जो अपने पहले वालों से सुनते रहे हैं, इसलिए रट्टू तोते की तरह उन्हें ही दुहरा देते हैं। भीतरी लगाव और सरोकार जब संस्कारों में ही नहीं है तो फिर व्यवहार में कहाँ से आएगा?

5

व्यंग्य की भाषा की यह विशेषता होती है कि देखने में तो शब्द और वाक्य–संरचना बिल्कुल स्पष्ट और सीधी–सादी होती है परंतु अर्थ की दृष्टि से वह बहुत गहरी और गंभीर बात की ओर संकेत करती है। जैसे, यह लिखा मिले कि 'साहित्य के वयोवृद्ध थकित हुए', 'वे लाठी टेकते हुए सड़क पर चलते। मोटा चश्मा लगाकर चाँद देखते, निमोनिया की दवा जेब में रखकर बगीचे में घूमते। कान में ऊँचा सुनने का यंत्र लगाकर संगीत–सभा में बैठते। भोजन से अधिक मात्रा में पाचन का चूरन खाते।' पहला वाक्य बताता है कि आगे लिखी सभी बातें साहित्य के क्षेत्र में कार्यरत वयोवृद्ध और जीवन से थके व्यक्तियों के लिए लिखी गई हैं। और उसके बाद का एक–एक वाक्य व्यंग्य में लिखा गया है अर्थात् वाक्य तो सीधे हैं परंतु वे अर्थ कुछ और ही देते हैं। जैसे 'मोटा चश्मा लगाकर चाँद देखते।' इस वाक्य के द्वारा यह भाव व्यक्त किया जा है कि उन वृद्धों को कुछ दिखाई नहीं देता है, फिर भी इच्छा चाँद को देखने की है। इसी प्रकार बगीचे में घूमना उन्हें इतना पसंद है कि वे ठंड में भी घूमते हैं। परंतु कहीं निमोनिया न हो जाए, इस डर से हमेशा दवाइयाँ भी खाते रहते हैं। संगीत–सभा में जाना उनके लिए अधिक महत्वपूर्ण है, चाहे वे उसे यंत्र लगाकर ही क्यों न सुनें। उनकी चूरन खाने की मात्रा भोजन से अधिक होती है यानी कि भोजन पचाने के लिए भोजन से अधिक चूरन खाने पर मजबूर हैं। कहने का तात्पर्य हुआ कि जितना उन्हें भोगना था, भोग चुके हैं परंतु अभी भी तमन्ना है – हर चीज को और अधिक भोगने की। संतुष्टि कहीं भी नहीं है।

व्यंग्य की भाषा वाले इसी प्रकार के और वाक्यों पर ध्यान दीजिए – 'हमारे अर्थ का क्या होगा?' तथा, 'आपकी रॉयल्टी हम मंदिर में ही पहुँचा दिया करेंगे। आपको हम हर पाठ्य–पुस्तक में रखवाएँगे, और जो प्रकाशक धन देने में आनाकानी करेगा, उसे ठीक करेंगे।' ये दो वाक्य भी वृद्ध साहित्यकारों पर कटाक्ष करते हैं। साहित्यकार सदैव रॉयल्टी के लिए परेशान रहते हैं, पाठ्य–पुस्तकों में अपनी रचनाएँ रखवाने के लिए प्रयास करते हैं, प्रकाशकों से हमेशा परेशान रहते हैं। आप विशेष रूप से दूसरे वाक्य के 'ठीक करेगें' शब्दों पर ध्यान दीजिए। यह पूरी बात से स्पष्ट होता है कि यहाँ ठीक करेंगे का अर्थ है – डंडे के बल पर प्रकाशक से रॉयल्टी अपने लिए ले आया करेंगे यानी कि वृद्ध साहित्यकारों के लिए तरुण साहित्यकार एक बहुत बड़ा काम करके देंगे जो उनके बस की बात नहीं है।

हमें कहीं–कहीं यह लिखा हुआ देखने को मिलता है कि 'स्मरणीयो, सुनामधन्यो!' यह संबोधनवाचक है। हिंदी भाषा में संबोधन का प्रयोग करते समय अक्सर लोग एक बिंदी और लगा देते हैं। जैसे, 'प्रिय मित्रों' जोकि गलत है। इसके स्थान पर हमेशा 'प्रिय मित्रो!', 'प्रिय बच्चो!' का ही प्रयोग करना उचित है। यह भाषाई दृष्टि से शुद्ध भी है।

और वाक्यों पर ध्यान दीजिए 'युवकों ने एक दिन समारोहपूर्वक वयोवृद्धों को देवता मंदिर में प्रतिष्ठित कर दिया – तब उनका ध्यान तरुणों पर गया।', 'सड़कों पर घूम रहे होंगे'। इन वाक्यों में 'युवकों', 'वयोवृद्धों', 'तरुणों', 'सड़कों' और 'होंगे' शब्दों पर विशेष ध्यान दीजिए। इन शब्दों में मात्रा के साथ बिंदी भी लगी है। यहाँ इन सभी का प्रयोग बहुवचन के लिए किया गया है।

अब तक आप समझ चुके होंगे व्यंग्यात्मक शैली किसे कहते हैं। जी, हाँ 'व्यंग्यपूर्ण अंदाज में किसी बात को कहना ही व्यंग्यात्मक शैली होती है।' आइए अब कुछ बातें शब्द–शक्ति के बारे में करते हैं। शब्द–शक्यिाँ मख्यतः तीन प्रकार की होती हैं – अभिधा, लक्षणा; और व्यंजना। जब किसी बात को सीधे–सादे शब्दों में कहा जाता है और वे शब्द प्रचलित अर्थ बताते हैं, अभिधा कहलाती है। जैसे आप कहें कि 'मैंने चाँद देखा'। इसका सीधा–साधा अर्थ हुआ कि रात को आकाश में चमकता हुआ चाँद देखा। परंतु यदि यह कहें कि 'मैंने सुबह–सुबह चाँद देखा' तो इसका अर्थ होगा कि मैंने सुबह ही किसी अपने परमप्रिय व्यक्ति का चेहरा देखा क्योंकि आप जानते हैं कि सुबह चाँद दिख ही नहीं सकता। शब्दों की वह शक्ति जो मुख्य अर्थ से हटकर अर्थ दे और साथ–साथ अन्य अर्थ की कल्पना करनी पड़े तो वह लक्षणा कहलाती है। तीसरे प्रकार की शक्ति को व्यंजना कहते हैं। व्यंजना का अर्थ होता है – विशेष प्रकार का अर्थ। यह परिस्थिति के अनुसार अर्थ देता है। जैसे, किसी सोते हुए बच्चे से कहें कि बाहर सवेरा हो गया चिड़िया बोलने लगी। इसका अर्थ यह हुआ कि अब तुम भी उठ जाओ और बिस्तर छोड़ दो। किसी भी व्यंग्यात्मक रचना में 'व्यंजना' शब्द–शक्ति का अधिक से अधिक प्रयोग किया जाता है।

6

भारत–भूमि अनादिकाल से धर्मप्रयाण रही है। इसलिए इस भूभाग के निवासियों की संस्कृति एवं सभ्यता में धर्मशास्त्र का प्रमुख स्थान सदैव से ही रहा है । इस भूमि के विचारशील ऋषियों ने भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के निर्माण में इतना सुंदर कल्याणकारी योग दिया है कि आगे चलकर मुनियों ने भी इसी को विकासमय बनाने में कुछ न्यून सहयोग दिया हो, ऐसी कोई बात नहीं है। ऋषियों की श्रेयस्करी संस्कृति में आध्यात्मिकता का पुट जिस भाँति आत्मकल्याणार्थ भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति कर रहा था, उसी संस्कृति में मुनियों ने लौकिकता का मिश्रण देकर सदाचारों के नियमों–उपनियमों के द्वारा संसार में रहते हा भी, जो मोक्ष के मार्ग का निर्देश करते हुए कल्पसूत्र एवं धर्मसूत्रों की सृष्टि की है, वह भी धार्मिक तथा लौकिक जगत में अपने कर्तव्य–कर्म की ओर अग्रसर करने के लिए एक सुंदर विवेचन है। यहाँ पर धर्म का अर्थ कर्तव्य है, जो मानव–विचारों का स्वरूप उपस्थित करता है। इनमें आचार, व्यवहार, प्रायश्चित और कर्मफलों की पूर्ण अभिव्यक्ति हई है ।

विभिन्न धर्मशास्त्रों के उदय होने का कारण है, वैदिक ग्रंथों की दुर्बोधता । ग्रंथों की जटिलता ने लोगों को वास्तविक भावों एवं विचारों से जब अत्यंत दूर ही रखा, उस समय लोगों के आचार एवं विचारों में भी इतना भारी परिवर्तन आने लग गया था कि वे कल्याण मार्ग से च्युत होने लग गए थे। लोगों की लौकिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही फिर गौतम, बौद्धायन, वाशिष्ठ, विष्णु, हारीत, विखानस्, पैथीनसी, उशनस्, कश्यप और वृहस्पति के धर्मसूत्रों की रचना विभिन्न कालों में हुई है।

'मनुस्मृति' (मानव–धर्मशास्त्र) सर्वाधिक प्राचीन स्मृति ग्रंथ है, जिसमें अनेकानेक विषयों का विशद वर्णन हुआ है। मनुस्मृति के उपरांत 'याज्ञवल्क्य स्मृति' सामने आती है, जो एम.ए., आचार्य और शास्त्री परीक्षाओं के पाठ्य–ग्रंथों में भी रखी गई है। तदनंतर तो 'नारद स्मृति', 'पाराशर स्मृति',

'वृहस्पति स्मृति' को लेकर लगभग 152 स्मृतियाँ निकल पड़ीं। इन समस्त स्मृति ग्रंथकारों ने श्राद्धकर्म को शिखासूत्र रखते हुए स्पष्ट लिखा है। इतना ही नहीं, लौकिक कार्य, ईश–वंदना, अनुष्ठान, जप, यज्ञादि करने वाले एवं विविध भाँति के आचार एवं विचारों पर अनक श्लोकों की रचना वैसे ही तो नहीं की, जिनके प्रमाण समय–समय पर आज भी दिए जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उपस्थित होना एक स्वाभाविक बात है कि क्या उन स्मृतियों और शास्त्रों के निर्माता निरे ज्ञान–शून्य थे, क्या वे भौतिक जगत के पूर्ण विपरीत थे? क्या वे व्यर्थ के ही विश्वासों एवं भ्रमपूर्ण बातों (superstitions) को लेकर चल रहे थे अथवा उनकी बुद्धि की गति सीमित होकर आधुनिक विज्ञान की भाँति अग्रगामी न होकर रूढ़िवादिता की पुष्टि में ही लगी रहती अथवा जो कुछ उन्होंने कहा है वही शाश्वत सत्य स्वीकार कर लिया जाए और उसके आगे कुछ भी नहीं है आदि? इन सभी का उत्तर एक है और वह रहेगा भी। उसने जितनी निकटता के साथ आध्यात्मिक बातों की गवेषणा की है, उनकी चरणरज तुल्य भी गवेषणा आज का तथाकथित विद्वान एवं बुद्धिमान आज तक भी नहीं कर सका है। अतः श्राद्धादि पर जो कुछ ज्ञान उनका था और जिस रूप में ये करते हुए पा रहे थे, वह व्यर्थ नहीं था। हम तो संक्षेप में यहाँ पर उनके लिखे धर्मशास्त्रों द्वारा ही कुछ पंक्तियों को लिखने का साहस स्पष्टीकरण के रूप में कर रहे हैं।

कर्मभूमि में मनुष्य योनि प्राप्त हुई है । अतः शुभ और अशुभ कर्म तो करने ही पड़ते हैं और उनका फल भी योग्यता और शक्ति के अनुसार कार्य के करने वाले कर्ता को इस जन्म अथवा मृत्यु के पश्चात दूसरे जन्म में भी शुभ अथवा अशुभ रूप में अवश्य ही प्राप्त भी होते हैं। कर्मों के सुधार के ही लिए आर्य जाति ने जन्म से लेकर मृत्यु–पर्यंत कर्मकांड का आश्रय लिया और इसी से वह जाति जीवित भी रही है, जिससे उसकी इतनी महिमा भी देश–विदेशों में रही है। सत्वगुण कर्म मुक्तिदाता है, तो तमोगुण वृद्धि वाले पाप कर्म अंतःकरण में जड़ता लाकर मनुष्य को विभिन्न योनियों में भटकाता ही रहता है। मनुष्य के मूल में कर्म है और कर्म के अनुसार उसे जाति (द्विज अनार्य), आयु (जिस देह में पूर्वजन्म के कर्म जितने वर्ष भोगना है, भोगेगा) और भोग (सुख और दुःख) की भी उपलब्धि मिल जाती है। कर्म के तीन भेद हैं – 1. नित्य, 2. नैमित्तिक, 3 काम्य। काम्य कर्म किसी विशेष कामना की पूर्ति के ही लिए किए जाते हैं। अभिलाषा के निमित्त किए जाने वाले अनुष्ठान से कामना की प्राप्ति होती है। नित्य और नैमित्तिक की भाँति यह अनिवार्य कर्म नहीं है।

7

मृत्यु किसी की होने वाली है, उस समय और मृत्यु के उपरांत क्या स्थिति होती है, इस पर आप जरा मनन करें। अनेकानेक मनुष्य तो मृत्यु के समय अतीव व्याकुलता, छटपटाहट तथा वेदना का अनुभव करते हैं। ऐसा क्यों होता है? प्राण, प्राणी की समस्त नाड़ियों में व्याप्त रहता है। वह उस स्थान से खिंचकर एक स्थान पर एकत्र होता है। पूर्वाभ्यास के फलस्वरूप फिर उन नाड़ियों में जब वह खिसक जाता है, उस समय एक भाँति के आघात के परिणामस्वरूप उस प्राणी को अतीव पीड़ा होती है। प्राण के निकलने का समय जब बहुत निकट आता है, उस समय एक भाँति की मूर्छावस्था भी देखी जाती है। उस अचेत अवस्था में प्राणी को छोड़कर प्राण शरीर से बाहर निकल पड़ता है। सम्राट जिस भाँति कहीं बाहर जाता है तो उसके साथ ग्राम नायक एवं अन्य पदाधिकारी भी एकत्र होकर उसकी विदाई करते हैं, शरीर का सम्राट जीवात्मा भी अब इस देश से बाहर जा रहा है। अतः जाते समय उस प्राणी के ऊर्ध्वश्वास लेते ही चारों ओर से इंद्रियाँ और प्राण उपस्थित होने की सामग्री करते हैं। जीव अपने तैजस अंशों को, जिन्हें लेकर समस्त शरीर में व्याप्त रहता है, समेटता हुआ हृदय प्रदेश की ओर जाता है, जहाँ पर आत्मा अंगुष्ठ प्रमाण मात्र से विराजमान सिंहासनारूढ़ रहता है ।

इस आत्मा सम्राट के निकलने के साथ प्राण और समस्त सूक्ष्म इंद्रियाँ (सूक्ष्म शरीर) भी इस स्थूल देह को त्याग देते हैं। शरीर से निकलने वाले जीव के साथ उसके ज्ञान, कर्म, पूर्वजन्मानुभूत

बुद्धि भी होती है और इस भाँति पुण्य और पाप इन दोनों कर्मों के वशीभूत यह जीव एक शरीर को त्यागकर दूसरे नवीन देह को ग्रहण करने में तत्पर है। मृत्यु–समय मनुष्य की जितनी बाह्य शक्तियाँ हैं, वे सभी एकत्र होकर अन्तर्मुखी हो जाती हैं और फिर इस स्थूल शरीर से बाहर निकलना चाहती हैं। जीवन के समय की वे सब बातें जो भूलकर मस्तिष्क के सूक्ष्म कोष्ठकों में सुपुप्तावस्था में पड़ी रहती हैं, वे सब एकत्र होकर एक साथ निकलने के कारण जाग्रत और सजीव इस भाँति हो जाती हैं कि कुछ ही क्षण में जीव जीवन की समस्त घटनाओं को सिनेमा फिल्म की भाँति देख जाता है। जीवितावस्था में फिर से देखने के लिए दिनों लग जाएँ, फिर भी आधा भाग कदाचित ही देखा जाए। क्षण–भर में मानस पटल पर आई वे समस्त बातें जो तत्काल घूम जाती है, उन सबके सम्मिलित सार को संस्कार के रूप में वह जीवात्मा लेकर मृतात्मा के साथ हो लेता है। मरने वाले प्राणी को उस समय सहस्रों बिच्छुओं के काटने जैसा कष्ट होता है। इसका दूसरा कारण यह भी है कि मानसिक वेदना भी उसको पीड़ित करती है कि उसने जीवन का सदुपयोग नहीं किया और सब छोड़कर अब यह जा रहा है। रोगादि शारीरिक पीड़ा मृत्यु के कुछ क्षण पूर्व जब इंद्रियों की शक्ति अंतर्मुखी हो जाती है, तभी बंद हो जाती हैं। मृत्यु के पूर्व शरीर सब कष्ट सह लेता है। शारीरिक शिथिलता तथा अचेतनता जैसे ही आने लगती है कि वृक्ष की असमर्थ शाखा से फल टूटने की भाँति तुरंत जीव शरीर से उड़ जाता है, मृत्यु हो जाती है। यह जीव अधिकांशतः मुख के छिद्रों – आँख, नाक, कान, मुँह में से निकलता है। दुराचारियों के नीचे के छिद्रों यानी मल–मूत्र के द्वार से, और ऊँचे पहुँचे हए योगियों आदि का कपाल (ब्रह्मरंध) से जाता है।

जीव स्थूल देह से निकलते ही उसका सूक्ष्म शरीर इतना हल्का होकर पक्षियों की भाँति इधर–उधर जा–आ सकने में अपने आपको समर्थ पाता है। उसे आज अत्यधिक प्रसन्नता है, जैसे पिंजरे में बंद शुक (तोते) को, पिजर के सहसा त्यागने पर होती है। किंतु शुक की ही भाँति वह भी इतने वर्षों तक उस स्थूल देह–रूपी पिंजर में रहने से ममतावान है। वह बार–बार उस ओर प्रविष्ट होने की इच्छा भी करता है, अतः बार–बार शव के आगे–पीछे आता–जाता रहता है। परिवार वालों को रुदन करते हुए देखकर उसे कष्ट होता है कि वे क्यों रुदन करते हैं। वह कुछ कहता भी है, किन्तु उसकी ध्वनि अब ऐसी नहीं है जो सुनाई दे सके। उसकी गति बड़ी विचित्र हो गई है। वह घर लौटता है, श्मशान जाता है, किन्तु अंत में जब देह को भस्मीभूत होते हुए देखता है, तब हताश होकर घर लौटता है और जिसमें मोह होता है, वहाँ पर विचरण करता रहता है। यह विचरण करते रहने की स्थिति (भूत–प्रेत बनकर रहना) इंद्रिय वासनाओं, बदला लेने की भावनाओं को तृप्त करने तक रहती है, किंतु साधारण वासनाओं वाले प्राणी धार्मिक वृत्ति अथवा प्रबुद्ध चित्त वाले होने से दाह संस्कार के पश्चात ही समस्त बंधन तोड़कर जैसे ही उदासीनता धारण करते हैं कि उन्हें नींद आती है। देखा जाता है कि परिश्रम की थकान सुंदर शैया प्राप्ति पर निद्रा ले पाती है। मृतात्मा भी स्थूल गरीर में रहकर अथक परिश्रम करके आई है, अतः नींद की आवश्यकता है।

8

हम जानते थे कि भौतिक विज्ञान से उत्पन्न भौतिक उन्ननि स्थायी नहीं है, और वह अनिश्चित भी है। सिर्फ इतना ही नहीं, इस उन्नति में केवल विलासमय जीवन व्यतीत करने के और है भी क्या? यह विलासमय जीवन, प्राणी को रोगयुक्त कर देता है। इसलिए उसे अतिशीघ्र परलोकगामी होना पड़ेगा। हम तो न्यूनातिन्यून सौ वर्ष जीवित रहें, ऐसी कामना किया करते थे। दीर्घजीवी होने के लिए ही जिह्वा–दमन भी था, जिससे उदर रोगी न हो। संयमशील होकर, वीर्यवान होते, जिससे दौर्बल्य के शीघ्रातिशीघ्र शिकार न हो जाएँ। 'शरीरमाद्यं खलुधर्म साधनं' का हमारा उद्घोष था। इन सबका अभिप्रायः यह तो नहीं है कि हमारे यहाँ विभिन्न खाद्यों से निर्मित मिष्ठान्न गामग्री का अभाव था। चटपटी वस्तु होती ही नहीं । हम निरे साधुत्व में रहकर अपने

जीवन को बुद्धुपन में ही बिता देते हों, ऐसी कोई बात नहीं थी। जितना आनंद उन भारतीयों ने तुष्टि के साथ मनाया, हम शतांश भी उसका आनंद प्राप्त नहीं कर सकते।

क्या हम विद्या बुद्धि में किसी से भी न्यून थे! आज का व्यक्ति प्राचीन व्यक्तियों की समता में तिल मात्र भी ठहर नहीं सकता। वे चलते–फिरते कोश (Encyclopedia/Dictionary) एवं ग्रंथों के कार्य में सहायक थे। राजनीति के वे धनी थे। वीरता में दुर्दमनीय थे, तो क्षमा और त्याग में भी अद्वितीय थे। इन सबमें से एक भी बात आज किसी भी व्यक्ति में दिखलाई नहीं पड़ती है। आइए, प्राचीनकाल की सूक्ष्म झाँकी के दर्शन कर, 'हम क्या थे और क्या हो गए हैं?' इस पर स्वतः विचार करें।

क्या हमारे पूर्वज निरे मूर्ख थे? वे शिशु–सारल्य आश्चर्यचकित दृष्टि से मूर्य के उदय होने, चंद्र सहित आकाश में तारकावली, घन–गर्जन के साथ सौदामिनी की चमक को देखा करते थे। कभी भय से अभिभूत होकर उनकी उपासना करते थे, तो कभी उनसे प्रसन्नता की कामना करते थे आदि। आज भारतीयों के हृदय में घर किए हुए विचार पाश्चात्य–शिक्षा, दीक्षा एवं वातावरण की ही देन हैं। स्वतंत्रता के पश्चात हम जितने अंधकार में विलीन हुए हैं, उससे पूर्व इतने गहरे अज्ञान में नहीं थे। जो कुछ सीखना था, वह भी हमारे ही दुराग्रह से हमने कटु आलोचना करते हुए, सब कुछ नष्ट ही किया है। स्वतंत्र भारत पर तो निप्पक्ष होकर विद्वानों को गवेपणा, पुरुषार्थ एवं त्याग में लगना ही चाहिए था, किंतु देश–प्रेम, जाति–प्रेम एवं धर्म–प्रेम सब कुछ नष्ट केवल इस बाह्याडंबर ने इतना कर दिया कि हम सब उम चमक को रखने वाली सभ्यता में एक साथ टूट पड़े हैं। निवास के लिए अब साधारण स्थान नहीं चाहिए। विशालकाय सीमेंटिड और चूने पत्थर के आवास हों, जहाँ पर विभिन्न कक्ष हों, बैठने–उठने के लिए सोफासैट, टेबल, कुर्सी आदि उपकरणों के साथ पंखा, रेडियो आदि विलास की सामग्री भी होना अत्याज्य है। मित्रमंडली के साथ रहने के लिए चाय पार्टी का व्यय भी आज अनिवार्य–सा है। इस भाँति ये समस्त उपकरण आज के युवाओं को आधुनिक सभ्यता में सम्मिलित तो कर रहे हैं, लेकिन इन आवश्यकताओं की पूर्ति बिना पैसे के संभव कैसे हो, यह भी तो देखना है । सभी सभ्य कहे जाने वाले पुरुषों में एक होड़–सी लग रही है। इस होड़ में वे जितने अधिक परिश्रम करके पैसा प्राप्त करना चाहते हैं, उतनी ही अधिक उनकी अभिलाषाएँ, तृष्णा एवं कामना में वृद्धि होती ही जा रही है। परिश्रम से इतना पैसा जब नहीं मिलता है, तब तक अन्य ऐसे उपायों को भी अपना रहे हैं, जिससे आज विश्व में चारों ओर अशांति व्याप्त हो गई है। यह अशांति पूर्वजों में नहीं थी।

हमारे पूर्वज भौतिक उन्नति में दोषों को अधिक देखकर उसमें त्याग–भावना रखते थे। काल्पनिक–विज्ञान विलासिता की वृद्धि करता ही है, अतः वे ऋषि–महर्षि इन सभी बातों का ज्ञान तो रखते थे, जो गहन एवं सूक्ष्म होता था, किंतु उनका आदेश था कि इन्हें केवल जानना ही आवश्यक है, उसके लिए उपासना त्याज्य है। प्रत्येक वस्तु का मूक्ष्म ज्ञान होना भी चाहिए, किंतु उसकी उपासना करना विलासिता में लीन कर देना है। अतः आधुनिक भाषा वाले विज्ञान से भी वे परिचित ही नहीं थे, बल्कि उस विषय का सूक्ष्म ज्ञान भी उन्हें अवश्य था। इतना होने पर भी वे विलासिता से दूर रहने के कारण इनका तभी उपयोग करते थे, जब उन्हें इस बात की आवश्यकता होती थी।

योग और समाधि दो ही ऐसी वस्तुएँ हैं, जो उपादेय हैं। इन वस्तुओं द्वारा परमात्मा के साथ साक्षात्कार तो होता है, किंतु एक ऐसी अकथनीय प्रानन्द की प्राप्ति भी होती है जो अद्वितीय है। इससे समस्त भ्रम दूर होकर हम माया–जाल से छूट जाते हैं। वेद इस ओर व्यक्तियों को आकर्षित करता है, किंतु ऐसी बात नहीं है कि वह अन्य वस्तु से उपेक्षा करता हो। यह संसार है, जिसमें समता कहाँ है? विषमता इसमें रहेगी। अतः शत्रुओं से रक्षा–प्राप्ति के निमित्त उन्होंने सूक्ष्मतर विज्ञानों और कलापूर्ण यंत्रों का भी आविष्कार किया था, जो शताब्दियों से भारतीयों के सोते पड़े रहने से विस्मृतावस्था में चला गया है। कालांतर में जब विदेशी आविष्कार के रूप में सबके सामने उन उपकरणों को रखते हैं, तब इन भारतीयों की आँखें खुलती हैं कि इनका वर्णन

तो हमारे शास्त्रों में पूर्व से ही था। यह नवीन वस्तु नहीं है। दूसरा व्यक्ति कहता है कि ये तो पौराणिक कल्पित–सी बात है। यदि नहीं, तो बना क्यों नहीं लेते? यह है हमारी स्थिति।

हमारे ग्रंथ ईर्ष्यावश अग्नि में स्वाहा कर दिए गए, नदियों में प्रवाहित कर दिए गए और कई एक सुरक्षा–निमित्त भूगर्भ में गाड़ दिए गए, किंतु वे सब इस भाँति नष्ट कर ही दिए गए हैं। जो कुछ शेष रह गए थे, वे स्वार्थमयी भावना से किसी के द्वारा प्रकाशित नहीं किए गए। जो कंठस्थ थे वे गुरु परंपरा नष्ट होने के साथ ही विलीन हो गए। इस भाँति हम हमारे धन के नष्ट हो जाने से सब ओर से लुट गए। दरिद्र होकर परमुखापेक्षी जब हुए, तब विदेशियों की या बनी। उन्होंने अपनी शैली में अपना धर्म, अपना साहित्य एवं अपनी भाषा का प्रचार करते हुए वातावरण को ही इतना परिवर्तित कर दिया कि आज बुद्धि के धनी हम, ऊपर से भी ईसाई, मुसलमान, यहूदी आदि विदेशी जैसे प्रतीत हो रहे हैं, तो भीतर से भी महामूढ़ होकर पूरे विदेशी हो चुके हैं। आज हमारी संस्कृति का चिह्न हमारे पास भी तो नहीं रहा है। हम उन चिह्नों को रखते हुए लज्जित हो रहे हैं। अब हम हिंदू या आर्य कहलाने में भी सकुचाते हैं, जबकि अन्य धर्मावलंबी अपने सिर को ऊपर करते हुए कहते हैं कि हम अमुक हैं। यह है हमारी सोचनीय दशा!

9

संस्कृत की महत्ता को सर्वोपरि स्थान दे देने के पश्चात यह भी प्रश्न उठ खड़ा होता है कि समृद्ध साहित्य वाली एवं महत्व प्रदर्शन करने वाली भाषा को आधुनिक आलोचकों ने 'मृतभाषा' (Dead Language) की संज्ञा क्यों और कैसे दी है? इसमें कारण तो अवश्य ही होने चाहिए। एक रूप में यह 'मृतभाषा' अवश्य कह दी जाए, तो अत्युक्ति न होगी। जब तक हमारे ही देशवासियों की सत्ता यहाँ पर रही है और जब तक विदेशी शासक भी आकर यहीं के होकर रहने लग गए हैं, तब तक तो यह भाषा इस नाम की संज्ञा से अभिहित नहीं की जाती रही है। स्थान–स्थान पर संस्कृत पाठशालाएँ थीं। संस्कारों का प्रचार भी घर–घर था ही और धार्मिक भावनाओं पर भी बलपूर्वक कुठाराघात नहीं किया गया था, सिवाल औरंगजेब की भाँति वाले चार–पाँच यवन शासकों के अलावा। इससे संस्कृत का प्रचलन और उस शिक्षा की परिपाटी में कोई परिवर्तन नहीं आया।

अंग्रेजों के पूर्व तक हम इस 'मृतभाषा' वाले शब्द से पूरी तरह से अपरिचित थे, किंतु गोरांग महाप्रभु के आगमन के पश्चात ही गुड़ देते हुए, धीरे–धीरे हमारी संस्कृति को मटियामेट करने के लिए, उसके साथ जैसे ही विष देना शुरू किया, हम भारतीय फिर संभल नहीं पाए। उनकी सभ्यता हमें सुंदर एवं रुचिपूर्ण प्रतीत होने लगी। उनकी कार्य करने की शैली, व्यवस्थापूर्ण आयोजन एवं विभिन्न विभागों की कार्यपटुता ने भारतीयों को आकर्षित किया। वे सेवक–रूप में उपस्थित हुए। उदर–पोषण के आकर्षक विभाग वहाँ पर थे ही, किंतु सब कार्य उनकी भाषा में करना अनिवार्य था। भारतीयों को इस भाषा का ज्ञान प्राप्त करना पड़ा था क्योंकि वे शासक यही अपेक्षा रखते थे। कलकत्ता में प्रथम विश्वविद्यालय का श्रीगणेश हुआ। आंग्ल भाषा की बोली सीखने की रुचि भारतीयों को होने लगी। मासिक मुद्राओं को वेतन–रूप में लाते हुए लोगों को देखकर अन्य भारतीयों का भी ह्रदय परिवर्तन होने लग गया था। शिक्षा प्राप्त तो इस भाँति होने ही लग गई थी, जहाँ बलपूर्वक अपनी शिक्षा देने का प्रश्न ही नहीं रहा। उनकी देखा–देखी अब तो वेशभूषा भी कुछ बदलने लगी थी। उनकी ओर से कोई बल का प्रयोग नहीं था, केवल अपनी–अपनी रुचि थी। धर्म में भी फिर इन लोगों ने मंत्र फूँकना शुरू कर दिया था। गिरजाघरों के पादरी भाईचारा (brotherhood) का संदेश लेकर आपत्ति में शीघ्र सहयोग देकर दीनजनों के ह्रदय को आकर्षित कर लेते थे। धीरे–धीरे अब इनके हथकंडे और अधिक मधुर रूप में चलने लगे। साहित्य का क्षेत्र जो रिक्त पड़ा हुआ था, उसपर आलोचक, गवेषक तथा लेखक के रूप में पाकर उपस्थित हुए। हमारे ग्रंथों का अध्ययन इनके द्वारा किया गया।

परिश्रम के बिना कोई कार्य हुआ नहीं करते हैं। भारतीय इस समय तक अत्यंत आलसी, वैमनस्य से परिपूर्ण एवं स्वार्थी हो चुके थे। उन्हें मान–अपमान एवं स्वाभिमान का भी ध्यान नहीं था। अच्छा सुअवसर इन्हें प्राप्त हुआ। हमने संस्कृति खंड में 'हम क्या थे, क्या हो गए' अध्याय में मिश्रण द्वारा हमारे साहित्य का दिग्दर्शन करा दिया है, किंतु यहाँ तो मिश्रण से भी भयंकर बातें होने लग गई थीं। आलोचक एवं गवेषक का एक नया रूप सामने आया।

मैक्डोनल, पिटरसन, मैक्समूलर जैसे संस्कृत के ज्ञाता विदेशी होते हुए भी हम संस्कृतज्ञों को हमारी ही सभ्यता का पाठ पढ़ाने लगे? आज हम उन्हें ही स्थान–स्थान पर उद्धरणों के रूप में प्रमाण दे रहे हैं, मानो वे हमारे लिए ऋषि–मुनि जैसे आप्तपुरुष हैं। यह है हमारी स्थिति। ऐसे ही व्यक्तियों द्वारा प्रथम उद्घोषित किया गया कि संस्कृत एक मृतभाषा है, वह भारत की बोलचाल की भाषा कदापि नहीं रही। फिर क्या था, धीरे–धीरे विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विद्यालयों के लिए यह तर्क का विषय (debatable) बना दिया गया। ऐसे महानुभावों द्वारा जब इस भाँति के उद्गार भोले–भाले रूप में निष्पक्षता का चोला धारण किए हुए निकले, तो हमारे तथाकथित विद्वानों को भी ज्ञान हुआ कि ये उचित ही कहते हैं। संस्कृत वास्तव में ही 'मृतभाषा' है। यह बोलचाल का रूप किसी भी अवस्था में धारण नहीं कर सकती, क्योंकि इसका व्याकरण–शून्य ज्ञान असंभव है। व्याकरण का अध्ययन करना जीवन को समर्पण कर देना है, इसलिए सीमित शिक्षित समुदाय की ही यह भाषा हो सकती है। सर्वसाधारण की यह भाषा न थी और न कभी हो ही सकती है। हम भारतीय फिर भ्रम में भटका दिए गए ।

आइए, अब इस भाषा के अस्तित्व का ज्ञान कराते हुए, इस भाषा में लिखे ग्रंथों द्वारा प्रमाण भी उपस्थित करें। यह बोलचाल की भाषा सर्वसाधारण के लिए एक लंबे समय तक रही है, जितने समय तक कदाचित् अंग्रेजी भी भविष्य में नहीं रह पाएगी। अंग्रेजी तो अब स्थान–स्थान से स्पष्ट रूप से पलायमान होती दिखलाई पड़ रही है। कौन जानता था कि अंग्रेजों का सूर्य, जो कभी कहीं पर भी अस्त नहीं होता था, वह सहसा अस्त होकर एक सीमित भूभाग को सिमेटे हुए बैठा रहेगा। यही अवस्था इस आंग्लभाषा की होने वाली है और फिर से संस्कृत के वे दिन आने वाले हैं, जो किसी समय थे। इतिहास प्राचीन बातों का पुनरवलोकन करता ही है। हिंदी भी अपने क्षेत्र में जड़ें जमा चुकी है, जो संस्कृत की पुत्री है। फिर यह कैसे असंभव है कि शुद्ध हिंदी संस्कृत के शुभागमन के लिए आयोजन नहीं करे।

भाषाविज्ञान को उठाकर देखिए तो सही, आपको स्पष्ट ज्ञात होगा कि संस्कृत के शब्द ही अन्यान्य विश्व की भाषा के जनक हैं, जो विकृत रूप में पहिचाने नहीं जाते। जैसे 'संस्कृति' और 'साहित्य' में विदेशियों ने ऐसा मिश्रण किया कि आज हम और हमारा साहित्य पहचाना तक नहीं जाता है। यह संस्कृत भाषा ही एक ऐसी भाषा है, जिसमें विश्व की समस्त भाषाओं का साक्षात्कार किया जा सकता है, यदि आप संस्कृतज्ञ पूर्ण हैं।

सिंधी के निम्नलिखित अनुच्छेद का हिंदी भाषा में अनुवाद कीजिएः

10

कंवर वटि सदाई लूलनि लंगिड़नि, पिंगुलनि, अंधनि, मंडनि जो अटालो रहंदो हो, जिनि जो पालन पोषणु पहिंजे हड़ां–ब॒ड़ां कंदो हो। हिक दफ़े कुंभलीमा जे ग॒ोठ में अमृत वेले भ॒जनु करण लाइ संगति में आयो ऐं ख़्यालु होसि त मंझंदि ताईं कीर्तनु चालू रखंदो। वक़्तु वियो गुज़िरंदो ऐं मेलो वियो मचंदो। माण्हूं मौज सां शब्द वर्षा जो रसु पी रहिया हुआ, त हिक शेवाधारीअ चयुसि, 'साई तव्हां जे टोलीअ में हिकु सूरदासु आहे। चवे थो त जेसीं तही तेल मेट सां न विहिंजारींदा, तेसीं हू पाण अनु जलु न वर्ताईंदो।' इन ते कंवर चयुसि, 'हाजुरु, कीर्तनु पूरो करे अची थो सनानु करायांसि।' परे ब॒ारहें बजे मज़लिस बरख़ास्तु थी ऐं कंवरु मोटी आयो सूरदास वटि। पोइ यकदमि छेर जामो लाहे, मेटु मले ऐं उन

में तेलु बिझी, सूरदास जे बुत जी ख़ूबु मालिश कई ऐं महिट चहिट करे उनखे अछो उजिरो कयाईं अहिड़ो हो कंवरु जंहिं जहिड़ो किरोड़नि में को मुश्किल लभे!

कंवरु सदाई मांझंदनि वारे ॿाए धर्मदास जे वरिसीअ ते भॻति विझण वेंदो हो। हिक दफे ॿ ॼणा उन लाइ खेसि वठण आया। ॿिन्ही ॼणनि कंवर जो नालो बुधो हो, पर अखिएं ॾिठो न हुआऊं। रहड़कीअ में माण्हुनि खां पुछियाऊं, 'कंवरु किथे आहे?' हिक ॼणे वराण्युनि, 'अबा, तुंहिंजे साम्हूं उहो शख़्सु गारे जी तग़ारी खंयो बीठो आहे, सो अथेई कंवरु!' क़ासिद खे ऐतबारु कीन आयो. समुझियाई त साणुसि चरिचो थो करे। भला कंवर जहिड़ो हाकारो सख़ावत जो धणी, ग़रीबनवाज़ु, हक़परूॾु, सो खणे तग़ारी, सा ॻाल्हि हुन जे खोपिरीअ में दाख़िलु न पेई थिए। दिलि झले चयाईंसि, 'यार, ओपरनि सां अहिड़ा चरिचा न था सूंहंनि, रहड़की आहे. संत सतरामदास जो घरु, उते जा माण्हूं अहिड़ा चरिचा कनि त अरमानु!' हुन माण्हूअ क़ासिद खे घणोई समुझायो, पर वरियो की कीन। नेठि कंवरु बि उहा तग़ारी खणंदो, हुन वटां अची लांघाऊ थियो ऐं हुननि जी गुफ़्तगू बुधी क़ासिद खां पुछियाईं, 'अबा, तोखे छा घुरिजे?' 'मां थो हिन खां पुंछा त स्वामी कंवरराम जनि किथे आहिनि? असा मांझांदनि खां स्वामी जनि खे वठण आया आहियूं; पर ही यारु गोथनाथी लॻाए बीठो आहे।' इहो विस्तारु बुधी कंवर महिमाननि जो मर्यादा अनुसारु आदरु सतिकारु कयो ऐं चयाईं, 'अबा, नाले में छा रखियो आहे? तंहिं हूंदे बि तव्हां खे खपे कंवरु, सो त हिन मिटीअ जे पुतिले जो नालो आहे।' कंवर वातां इहो गुफ़्तो बुधी क़ासिद पशेमान थिया ऐं यकदमि संदसि पेरनि ते किरी पिया।

*****